स्वाध्याय संग्रह

A DEVOTIONAL ANTHOLOGY

दीवानचन्द

... भल्ला ने हरिद्वार कुम्भ (सं० १९९५ वि०) के अवसर
...-प्रसाद के रूप में ४००० प्रतियाँ वितीर्ण ... ।

ओ३म्

वेद

(अ) परमात्मा का स्वरूप

ईश्वर एक है, पर उसके अनेक नाम हैं

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुः
  अथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति
  अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥१॥

ऋ० १-१६४-२२

वह एक है, परन्तु विद्वान पुरुष अनेक प्रकार के नामों से उसका वर्णन करते हैं। उसको इन्द्र, मित्र, वरुण और अग्नि के नाम से पुकारते हैं। वही दिव्य सुपर्ण गरुत्मान है। उसी अग्नि रूप प्रभु को यम और मातरिश्वा कहते हैं।

तदेवाग्निस्तदादित्यः, तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म, ता आपः स प्रजापतिः ॥२॥

यजु० ३२–१

वही अग्नि है, वही आदित्य है, वही वायु है, वही चन्द्रमा है, वही शुक्र है, वही ब्रह्म है, वही अप् (सर्वव्यापक) और वही प्रजापति है ।

—२—

विश्व के जीवनदाता प्रभु का विराट रूप

यस्य भूमिः प्रमा अन्तरिक्षमुतोदरम् ।
दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणेनमः ॥३॥

अथर्व १०–७–३२

भूमि जिस का पैर है और अन्तरिक्ष उदर है; द्युलोक को जिसने अपना सिर बनाया है, उस महान ब्रह्म को हमारा प्रणाम है ।

यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः।
अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय
ब्रह्मणे नमः ॥४॥
अथर्व १०-७-३३

सूर्य और बार बार नया होने वाला चन्द्रमा जिसका नेत्र है, अग्नि को जिसने अपना मुख बनाया है, उस परम ब्रह्म को हमारा प्रणाम है।

यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरङ्गिरसोभवन्।
दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानो स्तस्मै ज्येष्ठाय
ब्रह्मणेनमः ॥५॥
अथर्व १०-७-३४

वायु जिसका श्वास और प्रश्वास है, अङ्गिरस (प्रकाशमान किरणावली) जिसका नेत्र है, दिशाओं को जिसने ज्ञान का साधक (श्रोत्र) बनाया है, उस परम ब्रह्म को हमारा प्रणाम है।

यो भूतञ्च भव्यञ्च सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणेनमः ॥६॥

अथर्व १०-८-१

जो भूत और भविष्य सब का अधिष्ठाता है, जिसका अपना स्वरूप केवल प्रकाश और आनन्द है उस महान ब्रह्म को हमारा प्रणाम है ।

—३—

ईश्वर की सर्वज्ञता

यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति
यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम् ।
द्वौ संनिषद्य यन्मंत्रयेते
राजा तद्वेद वरुणस्तृतीयः ॥७॥

अथर्व ४-१६-२

जो मनुष्य बैठा है या चलता है, जो दूसरों को ठगता है, जो छिप कर कुछ काम करता है, जो दूसरों पर अत्याचार करता है और दो आदमी मिलकर जो कुछ गुप्त मंत्रणा करते हैं—इन सबको तीसरा सर्वश्रेष्ठ राजा परमेश्वर जानता है ।

—४—

प्रभु—हमारी पूजा का पात्र

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे
भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥८॥

ऋ० १०-१२१-१

प्रकाशस्वरूप प्रभु सृष्टि के पहले वर्तमान था और वह इस उत्पन्न हुए विश्व का एकमात्र प्रसिद्ध स्वामी था। उसीने इस द्युलोक और पृथिवी को धारण किया हुआ है। उस सुखस्वरूप देव का हम त्याग द्वारा पूजन करते हैं।

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व
उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥९॥

ऋ० १०-१२१-२

जो आत्मिक शक्ति और बल देने वाला है, सब जिसकी उपासना करते हैं, देव जिसकी आज्ञा में चलते हैं, जिसकी छाया अथवा शरण पाना अमर होना है और जिससे दूर होना ही मृत्यु है, अथवा जो मृत्यु का भी अधिष्ठाता है, उस सुख स्वरूप देव का हम त्याग द्वारा पूजन करते हैं।

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक
इद्राजा जगतो बभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१०॥

ऋ० १०-१२१-३

जो अपने महत्त्व के कारण इस जड़ एवं जंगम जगत का निश्चय रूप से एक मात्र राजा है, जो इस विश्व के द्विपद एवं चतुष्पद सभी पर शासन करता है, उस सुखस्वरूप देव का हम त्याग द्वारा पूजन करते हैं ।

येन द्यौ रुग्रा पृथिवी च दृढ़ा
येन स्वः स्तभितं येन नाकः ।
योऽन्तरिक्षे रजसो विमानः
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥११॥

ऋ० १०-१२१-५

जिसने उग्र द्युलोक और दृढ़ पृथिवी को धारण किया है, जिसने स्वः (स्वर्लोक अथवा सुख) और मोक्ष को धारण किया है, जो अन्तरिक्ष में लोक लोकान्तरों को घुमाता हुआ धारण कर रहा है, उस सुखस्वरूपदेव का हम त्याग द्वारा पूजन करते हैं ।

(आ) सामाजिक कल्याण

—१—

एकता और संगठन

समानी प्रपा सह वो ऽन्नभागः
समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्य-
तारा नाभिमिवाभितः ॥१२॥

अथर्व ३-३०-६

तुम्हारी जलशाला एकसी हो, अन्न का विभाजन साथ साथ हो, एक ही जुए में मैं तुमको साथ साथ जोड़ता हूं। जैसे पहिये के अरे नाभि में चारों ओर से जुड़े होते हैं वैसे ही तुम सब मिल कर ज्ञानस्वरूप प्रभु की पूजा करो।

संगच्छध्वं संवदध्वं संवो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥१३॥

ऋ० १०-१९१-२

आपस में मिलो, संवाद करो जिससे तुम्हारे मन एक ज्ञानवाले हों; जैसा कि पहले देवता (सूर्य चन्द्रादि) एक मन होकर अपने अपने भाग का सेवन कर रहे हैं अर्थात् अपना कर्तव्य करते हुए विश्व की स्थिति के कारण बने हुए हैं।

—२—

सत्संग

स्वस्ति पन्था मनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव।
पुनर्ददताऽघ्नता जानता संगमेमहि ॥१४॥
ऋ० ५-५१-१५

सूर्य और चन्द्र की भाँति हम कल्याणकारी मार्ग पर चलें और दानी, अहिंसक तथा विद्वान पुरुषों का साथ करें।

—३—

सार्वभौम सद्भाव

दृते दृँ ह मा मित्रस्य मा चक्षुषा
सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥१५॥
यजु० ३६-१८

हे दृढ़ बनाने वाले! मुझे ऐसा दृढ़ बना कि सब प्राणी मुझे मित्र की दृष्टि से देखें। मैं स्वयं सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखता हूं (और चाहता हूं कि) हम सब आपस में एक दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखें।

—४—

निर्भयता

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं
द्यावा पृथिवी उभे इमे।
अभयं पश्चादभयं पुरस्ता
दुत्तरादधरादभयं नो ऽस्तु ॥१६॥

अथर्व १६-१५-५

अन्तरिक्ष में हमारे लिये अभय हो, इन दोनों द्यौ और पृथिवी में अभय हो; अभय पीछे से हो, आगे से हो; ऊपर और नीचे से हमारे लिये अभय हो।

अभयं मित्रादभयममित्रा
दभयं ज्ञातादभयं पुरो यः।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः
सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥१७॥

अथर्व १६-१५-६

हम मित्रों से अभय हों, शत्रुओं से अभय हों; जाने हुए परिचितों से अभय हों और जो आगे आने वाले हैं, अपरिचित हैं, उनसे भी अभय हों; रात्रि और दिन में हम निर्भय रहें। समस्त दिशायें हमारे मित्र रूप में हों।

(६) व्यक्तिगत उन्नति

—१—

क्रियात्मक धर्म

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मागृधः कस्य स्विद्धनम् ॥१८॥

यजु० ४०-१

इस चलायमान संसार में जो कुछ चलता हुआ है वह सब ईश्वर से आच्छादित है। इसलिये त्याग भाव से भोग करो और किसी के भी धन का लालच मत करो।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतँ समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥१९॥

यजु० ४०-२

इस संसार में कर्म करते हुए सौ वर्ष जीने की इच्छा करो। तभी तुमसे कर्म का लगाव छूट सकेगा। कर्मबन्धन से छूटने का इसके अतिरिक्त अन्य उपाय नहीं है।

असुर्य्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः ।
तांस्ते प्रेत्याभि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥
२०॥

यजु० ४०-३

जो आत्मघात करने वाले पुरुष हैं वे यहाँ से शरीर छोड़ कर उन लोकों में जाते हैं जो प्रगाढ़ अन्धकार से भरे हुए हैं और असुरों के योग्य हैं ।

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानु पश्यति ।
सर्व भूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥२१॥

यजु० ४०-६

जो आत्मा में समस्त प्राणियों को और समस्त प्राणियों में आत्मा को अनुभव करता है वह किसी से घृणा नहीं करता ।

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः ॥२२॥

यजु० ४०-७

जिस अवस्था में एकता का दर्शन करने वाले ज्ञानी पुरुष को सब प्राणियों में आत्मतत्व ही प्रतीत होने लगता है, उस अवस्था में उसे मोह और शोक नहीं रहता ।

—०—

विद्या और अविद्या

अन्धन्तमः प्रविशन्ति ये ऽ विद्यामुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्याया ँ रताः ॥२३॥

यजु० ४०-६

जो ज्ञानविहीन कर्मकाण्ड रूप अविद्या की उपासना करते हैं वे घने अंधकार में प्रवेश करते हैं; किन्तु जो केवल विद्या में लगे हुए हैं वे उनसे भी बढ़कर अन्धकार को प्राप्त करते हैं ।

अन्यदेवाहुर्विद्यया अन्यदाहुरविद्यया ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥२४॥

यजु० ४०-१०

अविद्या और विद्या दोनों के भिन्न भिन्न फल हैं—ऐसा उन तत्वदर्शियों से सुना है जिन्होंने हमें यह रहस्य बतलाया है।

विद्याञ्चाविद्याञ्च यस्तद्वेदोभय ँ सह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥२५॥

यजु० ४०-११

विद्या और अविद्या दोनों को जो एक साथ जानता है—ज्ञानकाण्ड और कर्मकाण्ड दोनों में एक साथ निरत होता है—वह अविद्या, कर्मकाण्ड, से मृत्यु को तर कर विद्या से, ज्ञानकाण्ड से, मोक्ष को प्राप्त होता है।

—३—

सम्भूति और असम्भूति

अन्धन्तमः प्रविशन्ति ये ऽसम्भूतिमुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्या ँ रताः ॥२६॥

यजु० ४०–१२

जो केवल असम्भूति की उपासना करते हैं वे घोर अंधकार में प्रवेश करते हैं, किन्तु जो सम्भूति के पीछे लगे हुए हैं वे उनसे भी बढ़ कर घने अन्धकार को प्राप्त करते हैं।

असम्भूति और सम्भूति का क्या भाव है? भाष्यकार और टीकाकार इनके अनेक अर्थ बतलाते हैं। सम्भूति = होना, अस्तित्व में आना; असम्भूति = न होना, अनस्तित्व। असम्भूति = कार्य संसार (विकृति) जो भौतिक विज्ञान के अध्ययन का विषय है; सम्भूति = कारण जगत (प्रकृति) अथवा अन्तिम तत्व जो दर्शन शास्त्र का विषय है। यदि हम व्यक्तिगत जीवन को लें और उस पर नैतिक दृष्टि से विचार करें तो असम्भूति का अर्थ अहंकार का त्याग होगा और सम्भूति आत्म परिपूर्णता अथवा आत्मानुभव को कहेंगे। इस अर्थ का सम्बन्ध चरित्र-विकास के विधि तथा निषेध परक दो पक्षों से होगा।

अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात् ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥२७॥

यजु० ४०-१३

सम्भूति और असम्भूति दोनों के भिन्न भिन्न फल हैं—ऐसा हमने उन तत्वदर्शियों से सुना है जिन्होंने हमें इसका रहस्य बतलाया है ।

सम्भूतिञ्च विनाशञ्च यस्तद्वेदोभय ँ सह ।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्याऽमृतमश्नुते ॥२८॥

यजु० ४०-१४

सम्भूति और असम्भूति (विनाश) दोनों को जो साथ साथ जानता है, वह विनाश से मृत्यु को तर कर सम्भूति से अमृत को प्राप्त करता है ।

—४—

शुभ संकल्प

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं
तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं
तन्मेमनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२६॥

यजु० ३४-१

जो दिव्य मन जाग्रत अवस्था में दूर निकल जाता है और उसी प्रकार सोने की दशा में भी बहुत दूर चला जाता है, वह दूर जाने वाला, ज्योतियों की ज्योति अर्थात् इन्द्रियों का प्रकाशक मेरा मन शुभ संकल्पों वाला हो।

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो
यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥३०॥

यजु० ३४-२

कर्मशील, मनीषी, धीर पुरुष जिसके द्वारा परोपकार क्षेत्र में तथा जीवन-संघर्ष में बड़े बड़े कार्य कर दिखाते हैं, जो समस्त प्रजाओं (इन्द्रियों) के अन्दर एक अपूर्व पूज्य सत्ता है, वह मेरा मन शुभ संकल्पों वाला हो।

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च
यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु ।
यस्मान्नऋते किञ्चन कर्म क्रियते
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥३१॥

यजु० ३४–३

जो नये नये अनुभव कराता है, पिछले जाने हुए का स्मरण कराता है, संकट में धैर्य धारण कराता है, जो समस्त प्रजाओं (इन्द्रियों) के अन्दर एक अमर ज्योति है, जिसके बिना कोई कर्म नहीं किया जाता, वह मेरा मन शुभ संकल्पों वाला हो ।

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्
परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।
येन यज्ञस्तायते सप्त होता
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥३२॥

यजु० ३४–४

जिस अमृत मन के द्वारा यह भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान सभी जाना जाता है, जिससे सात होताओं* वाला यज्ञ फैलाया जाता है, वह मेरा मन शुभ संकल्पों वाला हो ।

* दो आँखें, दो कान, दो प्राण (प्राण और अपान) तथा जिह्वा ये जीवन-यज्ञ के सात होता हैं ।

यस्मिन्नृचः सामयजूँ षि यस्मिन्
प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिँश्चित्तँ सर्वमोतं प्रजानां
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥३३॥

यजु० ३४-५

जिसमें ऋचायें, साम और यजु इस प्रकार टिके हुए हैं जैसे रथ की नाभि में अरे, जिसमें इन्द्रियों की सारी प्रवृत्ति पिरोई रहती है, वह मेरा मन शुभ संकल्पों वाला हो।

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्
नेनीयतेऽभीषुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥३४॥

यजु० ३४-६

अच्छा सारथी जिस प्रकार वेगवान घोड़ों को बागों से पकड़ कर चलाये जाता है, उसी प्रकार जो मनुष्यों को लगातार चलाता रहता है, जो हृदय में रहने वाला, बड़ा फुर्तीला और सर्वाधिक वेग वाला है, वह मेरा मन शुभ संकल्पों वाला हो।

—५—

कल्याणकारी बुद्धि की याचना

ॐ भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॥३५॥

यजु० ३६–३

वह प्रभु सत् चित् आनन्द स्वरूप है। उस दिव्यगुणधारी, समस्त विश्व के उत्पन्न करने वाले प्रभु के सर्वश्रेष्ठ तेज का हम ध्यान करते हैं। वह प्रभु हमारी बुद्धि को कल्याण की ओर प्रेरित करे।

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधया अग्ने मेधाविनं कुरु ॥३६॥

यजु० ३२–१४

हे ज्ञान स्वरूप प्रभो! पितर और देवगण जिस धारणावती बुद्धि की उपासना करते हैं उससे आज मुझे मेधावी बना दो।

मेधां सायं मेधां प्रातः मेधां मध्यन्दिनं परि।
मेधां सूर्यस्य रश्मिभिः वचसा वेशयामहे ॥३७॥

अथर्व ६–१०८–५

मेधा को सायं, प्रातः, मध्यदिन के समय, सूर्य की रश्मियों के साथ और वचन के साथ हम ग्रहण करते हैं।

—६—

आत्मसमर्पण

आयुर्यज्ञेन कल्पताम्, प्राणो यज्ञेन कल्पताम्, चक्षुर्यज्ञेन कल्पताम्, श्रोत्रं यज्ञेन कल्पताम्, मनोयज्ञेन कल्पताम्, आत्मायज्ञेन कल्पताम्, ब्रह्मायज्ञेन कल्पताम्, ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताम्, स्वर्यज्ञेन कल्पताम्, पृष्ठंयज्ञेन कल्पताम्, यज्ञोयज्ञेन कल्पताम् । स्तोमश्चयजुश्च ऋक्च सामच बृहच्च रथन्तरञ्च । स्वर्देवा अगन्मामृता अभूम प्रजापतेः प्रजा अभूम वेट् स्वाहा ॥३८॥

यजु० १८-२९

मेरी आयु, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, मन और आत्मा श्रेष्ठतम पुण्यकर्म के लिये समर्पित हों। मेरा वैदिक ज्ञान, प्रतिभा, सुख और मेरा जाना हुआ परोपकार के लिये समर्पित हों। मेरा यज्ञ यज्ञ-रूप प्रभु के लिये समर्पित हो। अथर्व, ऋक्, यजु, साम, और बृहत् रथन्तर* सब यज्ञ के लिये हैं। (इन्हीं याज्ञिक कर्मों से) देवताओं ने सुख प्राप्त किया, वे अमर हुए और प्रजापति की प्रजा बने। मैं भी इस कल्याण कर्म के लिये अपने को समर्पित करता हूं।

---

* रथन्तर—सामवेद की ऋचाओं का एक विशेष भाग।

जागृत रहो

यो जागार तमृचः कामयन्ते
यो जागार तमु सामानि यन्ति।
यो जागार तमयं सोम आह
तवाहमस्मि सख्ये न्योकः ॥३९॥

ऋ० ५-४४-१४

जो जागता है उसे ऋचायें चाहती हैं, जो जागता है उसे साम प्राप्त होते हैं, जो जागता है उसे यह सोम* कहता है :—"मैं तेरा हूं। तेरी मित्रता में ही मेरा निवास है—तू मुझे जहाँ बुलावेगा मैं वहीं पहुँच जाऊँगा।"

—८—

उन्नति का मार्ग

व्रतेन दीक्षा माप्नोति दीक्षयाऽऽप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥४०॥

यजु० १९-३०

व्रत से दीक्षा, दीक्षा से दक्षिणा (योग्यता, निपुणता), दक्षिणा से श्रद्धा और श्रद्धा से सत्य प्राप्त किया जाता है।

* सोम—सम्भोग्य सुन्दर पदार्थों का प्रतीक हो सकता है।

—६—

शक्ति और संयम

तेजो ऽसि तेजो मयि धेहि ।
वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि ।
बलमसि बलं मयि धेहि ।
ओजो ऽसि ओजो मयि धेहि ।
मन्युरसि मन्युं मयि धेहि ।
सहो ऽसि सहो मयि धेहि ॥४१॥

यजु० १९-९

प्रभु तू तेज है, मेरे अन्दर तेज स्थापित कर। तू वीर्य (जीवनी शक्ति) है, मेरे अन्दर जीवनी शक्ति स्थापित कर। तू बल है, मेरे अन्दर बल की स्थापना कर। तू ओज है, मेरे अन्दर ओज स्थापित कर। तू पवित्र क्रोध है, मेरे अन्दर भी इसे स्थापित कर। तू सहन-शक्ति है, मेरे अन्दर भी सहनशक्ति की स्थापना कर।

—१०—

मोक्ष का साधन

वेदाहमेतं पुरुषं महान्त
मादित्यवर्णं तमसस्परस्तात् ।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति
नान्यः पन्था विद्यते ऽयनाय ॥४२॥
यजु० ३१-१८

मैं इस महान्, सूर्य के समान प्रकाशस्वरूप, अंधकार से पृथक् परमात्मा को जानता हूं। इसी को जान कर प्रत्येक प्राणी मृत्यु से छुटकारा पाता है। मोक्ष के लिये इसके अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग नहीं है ।

—११—

विजयी आत्मा

अपाम सोमम् अमृता अभूम
अगन्म ज्योतिरविदाम देवान् ।
किं नूनमस्मान् कृणवदरातिः
किमु धूर्तिरमृत मर्त्यस्य ॥४३॥
ऋ० ८-४८-३

मैंने सोम का पान किया है, मैं अमर हो गया हूं; मैंने प्रकाश पा लिया है; मैंने देवों (दिव्यगुणों) को प्राप्त कर लिया है। अतः अब निश्चय रूप से शत्रु हमारा क्या कर सकता है और मरणशील व्यक्ति की हिंसा, हे अमृत देव! मेरा क्या बिगाड़ सकती है?

उपनिषद्

(अ) पवित्र पद—ओ३म्

यम ने नचिकेता से कहा :—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति
तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥४४॥

कठ २-१५

सब वेद जिस पद की व्याख्या करते हैं, सब तप जिसका वर्णन करते हैं, जिस पद की कामना करते हुए व्यक्ति ब्रह्मचर्य को धारण करते हैं, उस पद को मैं तुझे संक्षेप में बतलाता हूँ—वह पद ओ३म् है।

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम्।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्यतत् ॥४५॥

कठ २-१६

निश्चय रूप से यह अक्षर ही ब्रह्म है। यह अक्षर ही परम्—सबसे श्रेष्ठ है। इसी अक्षर को जान कर जो पुरुष जिस वस्तु की कामना करता है वह उसे प्राप्त हो जाती है।

एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् ।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥४६॥

कठ २-१७

ओ३म् का यह आलम्बन श्रेष्ठ है, सबसे उत्कृष्ट है। इसी आलम्बन को जान कर मनुष्य ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है।

(आ) उठो, जागो

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं
पथस्तत् कवयो वदन्ति ॥४७॥

कठ ३-१४

उठो, जागो और श्रेष्ठ पुरुषों को पाकर (उनके सत्संग से) ज्ञान प्राप्त करो, किन्तु जैसे छुरी की धार अतीव तीक्ष्ण और पैनी होती है उसी प्रकार ज्ञानी पुरुषों ने इस मार्ग को अत्यन्त दुर्गम बतलाया है।

(६) जीवात्मा और परमात्मा

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया
समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्य
नश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥४८॥

मुण्डक ३-१-१

दो पक्षी हैं। वे परस्पर प्रेमी और सखा हैं। एक ही वृक्ष पर बैठे हुए हैं। उनमें एक उस वृक्ष के स्वादिष्ट फलों को खाता है और दूसरा न खाता हुआ केवल देखता है।

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नो
अनीशया शोचति मुह्यमानः।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीश
मस्य महिमानमिति वीतशोकः ॥४९॥

मुण्डक ३-१-२

उस वृक्ष पर पुरुष अर्थात् जीवात्मा, फल चखने में निमग्न अपनी दुर्बलता से मोह में पड़ा शोक करता है; किन्तु जब वह अपने से भिन्न उस दूसरे अर्थात् ईश्वर को और उसकी महिमा को जान जाता है तो शोकरहित हो जाता है।

(ई) प्रभु कैसे प्राप्त होता है ?

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः
तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् ॥५०॥

मुण्डक ३-२-३

यह आत्मा व्याख्यान से नहीं मिलता, न बुद्धि से और न बहुत सुनने पढ़ने से । यह आत्मा जिसे चुनता है, जिस पर अनुग्रह करता है, उसी को प्राप्त होता है । उसी कृपापात्र के सम्मुख यह अपने आपको प्रगट करता है ।

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो
न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिंगात् ।
एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वान्
तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम ॥५१॥

मुण्डक ३-२-४

यह आत्मा निर्बल व्यक्तियों को प्राप्त नहीं होता ; प्रमाद, तप और चिन्हत्याग अर्थात् संन्यास से भी नहीं मिलता । जो विद्वान इन त्याग आदि उपायों से बराबर यत्न करते रहते हैं उनको यह आत्मा प्राप्त होता है और वे ब्रह्मधाम में प्रवेश करते हैं ।

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा
सम्यग् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् ।
अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो
यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ॥५२॥

मुण्डक ३–१–५

निश्चय से यह आत्मा सत्य, तप, सम्यग् ज्ञान और नित्य ब्रह्मचर्य से प्राप्त होता है। अन्दर शरीर में यह शुभ्र और ज्योतिर्मय है जिसके दर्शन संयमी पुरुषों को होते हैं जिनके दोष नष्ट हो चुके हैं।

इह चेदवेदीदथसत्यमस्ति,
नचेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।
भूतेषु भूतेषु विचिन्त्य धीराः
प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥५३॥

केन २–५

यदि यहाँ ही ब्रह्म को जान लिया, तब तो ठीक है; यदि यहाँ न जाना तो महान हानि है। धीर पुरुष सब प्राणियों में प्रभु की खोज करते हुए इस लोक से चल कर अमृत अर्थात् मुक्त होते हैं।

(उ) प्रभु का स्वरूप

अपाणि पादो जवनो ग्रहीता
पश्यत्यचक्षुः सशृणोत्यकर्णः ।
सवेत्ति वेद्यं नच तस्यास्ति वेत्ता
तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ॥५४॥

श्वेता० ३–१६

यह ब्रह्म हाथ पैर से रहित है, परन्तु अत्यन्त वेगवान और ग्रहण करने वाला है। नेत्र न होते हुए भी सब को देखता है, कान न होते हुए भी सब कुछ सुनता है। यह सब जानने योग्य वस्तुओं को जानता है। उसका जानने वाला कोई नहीं है। उसे मुख्य महान पुरुष कहा गया है।

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं
तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्तात्
विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥५५॥

श्वेता० ६–७

उस ऐश्वर्यशालियों के भी परम महेश्वर, देवों के परम देव, रक्षकों के रक्षक, श्रेष्ठ से श्रेष्ठ भुवनों के स्वामी, स्तुति करने योग्य देव को हम जानें।

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते
न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते ।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञानबल क्रियाच ॥५६॥
श्वेता० ६–८

इस ब्रह्म का न कोई कार्य है और न कोई इन्द्रिय । न कोई उसके समान है और न कोई उससे बड़ा । इसकी श्रेष्ठ शक्ति अनेक प्रकार की सुनी जाती है । इसका ज्ञान, बल और क्रिया सब स्वाभाविक हैं ।

न तस्य कश्चित् पतिरस्ति लोके
न चेशिता नैवच तस्य लिङ्गम् ।
स कारणं करणाधिपाधिपो
न चास्य कश्चिज्जनिता नचाधिपः ॥५७॥
श्वेता० ६–९

संसार में उसका कोई स्वामी नहीं है, न कोई उसे वश में करने वाला है और न कोई उसका चिन्ह है । वह जगत का कारण है, इन्द्रियों के स्वामी जीव का अधिपति है, किन्तु उसका कोई उत्पादक और अधिपति नहीं है ।

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः
साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥५८॥

श्वेता० ६-११

वह एक देव सर्व प्राणियों में छिपा हुआ, सर्वव्यापक और सर्वान्तर्यामी है। वह कर्मों का अध्यक्ष, सब प्राणियों का निवास-स्थान, साक्षी, चेतन, निर्द्वन्द्व और निर्गुण है।

एको वशी निष्क्रियाणां बहूना
मेकं बीजं बहुधा यःकरोति।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा
स्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥५६॥

श्वेता० ६-१२

वह अनेक निष्क्रिय पदार्थों को वश में करने वाला है और एक बीज से अनेक रूप वाले संसार को उत्पन्न कर देता है। जो धीर पुरुष अपनी आत्मा में स्थित इस प्रभु को देखते हैं उन्हें शाश्वत सुख प्राप्त होता है, अन्यों को नहीं।

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनाना
मेको बहूनां यो विदधाति कामान् ।
तत्कारणं सांख्य योगाधिगम्यं
ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्व पाशैः ॥६०॥
श्वेता० ६-१३

वह नित्य सत्ताओं में नित्य, चेतनों का भी चेतन, एक होता हुआ अनेक जीवों की कामनाओं को पूर्ण करता है। उस सांख्य तथा योग* से प्राप्त होने योग्य जगत के कारण परमेश्वर को जान कर मनुष्य सब बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

न तत्र सूर्यो भाति न चंद्रतारकं
नेमा विद्युतोभान्ति कुतोऽयमग्निः ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥६१॥
श्वेता० ६-१४

वहाँ न सूर्य चमकता है, न चन्द्र, न तारकावलि ; न बिजली चमकती है—फिर यह अग्नि कैसे चमक सकती है ? वास्तव में उसके प्रकाशित होने से ही यह जगत प्रकाशित होता है—उसके प्रकाश से ही यह सब चमक रहा है।

---

* सांख्य और योग का अर्थ, इस स्थल पर, इन नामों वाले दर्शन शास्त्रों से नहीं है। यहाँ इनका तात्पर्य चिन्तन और निदिध्यासन हो सकता है।

भगवद्गीता

(अ) आत्मा सनातन और अमर है

न त्वेवाहं जातु नासं नत्वं नेमे जनाधिपाः ।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥६२॥

गीता २–१२

न तो ऐसा ही है कि मैं इसके पहले कभी न था या तुम कभी न थे, या ये राजा कभी न थे, और न ऐसा ही है कि इसके बाद हम सब नहीं रहेंगे ।

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तर प्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥६३॥

गीता २–१३

आत्मा को जैसे इस देह में लड़कपन, जवानी और उसके बाद बुढ़ापा प्राप्त होता है वैसे ही उसे इस देह के पश्चात् दूसरे शरीर* की प्राप्ति होती है। इस विषय में (अर्थात् एक शरीर छोड़ कर दूसरे शरीर में जाने से) धीर पुरुषों को शोक नहीं होता ।

---

*जैसे इस जीवन में लड़कपन आदि कई भाग हैं, वैसे ही यह जीवन भी हमारी संपूर्ण जीवन-शृंखला की एक कड़ी मात्र है ।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्वदर्शिभिः ॥६४॥

गीता २-१६

जिसका अस्तित्व नहीं है उसका होना असंभव है और जिसकी सत्ता है उसका कभी नाश नहीं हो सकता । तत्व जानने वाले ज्ञानी पुरुषों ने इन दोनों में यही भेद निश्चित किया है ।

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥६५॥

गीता २-१६

जो आत्मा को मारने वाला समझता है और जो इसे मरा हुआ समझता है, वे दोनों ही मूर्ख हैं । न यह मारता है, न मरता है ।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरो ऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥६६॥

गीता २–२२

जैसे मनुष्य पुराने वस्त्र फेंक कर नये ग्रहण करता है, उसी प्रकार आत्मा भी पुराना शरीर छोड़कर नवीन शरीर को ग्रहण करता है ।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥६७॥

गीता २–२३

आत्मा को न शस्त्र काट सकते हैं, न आग जला सकती है, न पानी भिगो सकता है और न हवा सुखा सकती है ।

(आ) कृष्ण का प्यारा*

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी ॥६८॥

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़ निश्चयः ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥६९॥

गीता १२-१३, १४

जो किसी से द्वेष नहीं करता, जो प्राणी मात्र का मित्र है, दयाशील है, जो ममता और अहंकार से रहित है, जिसके लिये सुख और दुःख दोनों समान हैं, जो क्षमावान है—

जो सर्वदा सन्तुष्ट, स्थिरचित्त, संयमी तथा दृढ़ निश्चयी है और जिसने मन और बुद्धि मुझे अर्पण कर दिये हैं, ऐसा मेरा भक्त मुझे प्रिय है ।

* भारत में कृष्ण के अनेक भक्त पाये जाते हैं । गीता के इन श्लोकों में ऐसे व्यक्ति का चित्र खींचा गया है जिससे कृष्ण प्रेम करेंगे । इन श्लोकों में एक आदर्श सन्त के जीवन का चित्र है ।

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥७०॥

गीता १२-१५

जिससे न लोगों को भय है और न जो लोगों से डरता है, जो हर्ष, क्रोध, भय आदि उद्वेगों से मुक्त हो गया है वह मुझे प्रिय है ।

अनपेक्षः शुचिर्दक्षः उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥७१॥

गीता १२-१६

जो किसी का मुहताज नहीं है, पवित्र, दक्ष, उदासीन और दुःखरहित है तथा जिसने सर्व प्रकार के कार्यों का आरंभ करना छोड़ दिया है* वह मेरा भक्त मुझे प्रिय है ।

* मुझे संदेह है कि आत्मविश्वास को छोड़ कर दूसरों के बताये मार्ग पर आँख मींचकर चल देना चरित्रगत कोई बहुमूल्य विशेषता होगी । गुरू और नेता स्वाभाविक रूप से इस बात पर ज़ोर अवश्य देते आये हैं, परन्तु मैं अनुभव करता हूँ कि आत्मविश्वास की कमी चरित्रगत निर्बलता है जो भारतीय चरित्र की सबसे बड़ी कमज़ोरी है ।

योो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥७२॥

गीता १२-१७

जो न किसी से प्रसन्न होता है और न द्वेष करता है; जो न शोक करता है और न आकांक्षा करता है; जिसने शुभ और अशुभ दोनों का परित्याग कर दिया है*; जो भक्तिमान है, वह मुझे प्रिय है।

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्ण सुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ॥७३॥

गीता १२-१८

जो शत्रु और मित्र को, मान और अपमान को, शीत और उष्ण को, तथा सुख और दुःख को समान समझता है; जो आसक्ति रहित है—

* यहाँ भी मुझे संदेह है कि मनुष्य चरित्र के विकास में कभी ऐसे स्थान पर भी पहुँचेगा जब वह शुभ और अशुभ से परे कहा जा सके और नैतिक उत्तरदायित्व से मुक्त हो जावे।

तुल्य निन्दा स्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केन चित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान् मे प्रियो नरः ॥७४॥

गीता १२-१६

जिसके लिये निन्दा और स्तुति समान हैं, जो मौन रहता है, जो, जो कुछ मिल जाय उसी में संतुष्ट रहता है, जो गृहविहीन* तथा स्थिर बुद्धिवाला है, वह भक्तिमान पुरुष मुझे प्रिय है।

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ॥७५॥

गीता १२-२०

जो मुझ में श्रद्धा रखकर, मुझे मान कर, इस उपरोक्त अमृत के समान हितकारक धर्म का आचरण करते हैं, वे भक्त मुझे अत्यन्त प्रिय हैं।

* गृहविहीन का तात्पर्य यहाँ आदर्श संन्यासी है। उसकी शक्ति अविचल निश्चय और दृढ विचारों में रहती है, किसी निश्चित स्थान विशेष में नहीं। इस संन्यासी से उन पुरुषों में कितना अन्तर है जिनका कोई निश्चित विश्वास और सुदृढ मत नहीं होता, पर अपने नियत निवासस्थानों को देख देख कर खुश हुआ करते हैं।

(ड) जीवन में सफलता का मार्ग

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥७६॥

गीता १८-७८

जहाँ योगेश्वर श्रीकृष्ण हैं और जहाँ धनुर्धर अर्जुन हैं, वहीं धन सम्पत्ति, विजय, शाश्वत ऐश्वर्य और अटल नीति हैं, ऐसा मेरा मत है।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या च द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥७७॥

प्रभो! तुम्हीं मेरी माता और तुम्हीं मेरे पिता हो; तुम्हीं मेरे बन्धु हो, और तुम्हीं मेरे सखा हो; तुम्हीं मेरी विद्या और तुम्हीं मेरे धन हो। हे देवों के देव! तुम्हीं मेरे सर्वस्व हो।